पंडित लखमीचन्द के सांगों में चित्रित धर्म का वास्तविक अर्थ

Updesh Devi*

Assistant Professor of Hindi, Guru College of Education, Mohindergarh

सार – ***भारतीय समाज में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन में धर्म की मुख्य भूमिका है। संसार के विभिन्न भू-भागों में निवास करने वाली मानव-जाति का निश्चित रूप से कोई न कोई धर्म है। विद्वानों ने 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'धृ' धातु से मन् प्रत्यय लगने से हुई है। इसका व्युत्पत्तिगत अर्थहै - धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना। 'धर्म' का नाम धर्म इसलिए पड़ा है कि वह सबको धारण करता है, जीवन की रक्षा करता है। अतः जिससे धारण और पोषण करना सिद्ध होता हो, वही धर्म है।सामान्यतः धर्म शब्द का प्रयोग कत्र्तव्य गुण नियम, न्यायशील, कर्म, उदारता आदि अर्थों में लिया जाता है। धर्म एक ऐसी आधारशीला है जो मनुष्य के कर्म और व्यवहार को नैतिक बनाता है। यह मनुष्य के तन को पवित्र और मन को शान्त रखने का सामथ्र्य रखता है।***

---------------------------------x---------------------------------

परिचय

'वृहत् हिन्दी कोश'में धर्म का अर्थ इस प्रकार बताया है - अभ्युदय और निःश्रेयस का साधना भूत वेद विहित कर्म, एक प्रकार का अदृश्य, जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, लौकिक सामाजिक, कत्र्तव्य, ऋषि,मुनि या पारलौकिक सुख की प्राप्ति हो। किसी वस्तु या सद्गति की प्राप्ति के लिए किसी महात्मा या पैगम्बर द्वारा परिवर्तित मत विशेष या व्यक्ति में सदा बनी रहने वाली सहजावृति, स्वभाव, प्रकृति।[14] सरल शब्दों में धर्म का सम्बन्ध धारण से है जो विशेष व्यक्ति अथवा समाज के जीवन को धारण कर सके अथवा जो व्यक्ति या समाज के द्वारा धारण किया जाए, वह विशेष गुण धर्म है।

'धर्म के स्वरूप की व्याख्या तीन प्रकार से की जाती है - प्रथम जिससे लोक द्वारा धारण किया जाए, वह धर्म है। द्वितीय, जो लोक को धारण करें वह धर्म है। यह कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर ले जाता है तथा अपराध की भावना से मुक्ति दिलाता है। 'धर्म एक सार्वभौमिक एवं मौलिक सामाजिक घटना है। धर्म हर समाज में पाया जाता है जहाँ मानव है, वहाँ धर्म है। धर्म की अभिव्यक्ति हर स्थान पर पाई जाती है।[15]

मानवीय जीवन में सद्भावनापूर्ण वातावरण बनाने के लिए धर्म को महत्त्वपूर्ण और प्रथम स्थान दिया गया है। धर्म वह धारणा है जो मानव को अपने जीने के साथ दूसरों को भी जीने की दिशा दिखाता है। धर्म का वास्तविक अर्थ यह है जिसमें व्यक्ति समाज में रहने की पद्धति को समझकर उसका अनुपालन करता हुआ अपनी उन्नति करता है और दूसरो को भी अपने ही समान समझकर अभ्युदय की ओर जाने दे। राजा, प्रजा, व्यक्ति एवं समाज धर्म के नियमों को यदि धारण न करें तो संसार में अराजकता छा जाए। 'वस्तुतः धर्म व्यक्ति में नियम पालन के गुण, सहिष्णुता के विचार, समता के भाव, परोपकारिता के लक्षण, समदृष्टि और बुराईयों से दूर रहने की दिशा दिखा दिखाता है।[16] व्यक्तिगत साधना के द्वारा व्यक्ति स्वयं को उच्चतम स्थिति तक पहुंचा लेता है, परन्तु यह साधना लोक साधना नहीं है न ही जन साधारण उस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। शुक्ल जी का मत है, "व्यक्तिगत सफलता के लिए जिसे 'नीति'कहते हैं सामाजिक आदर्श की सफलता का साधन होकर वही धर्म हो जाता है।'[17]

धर्म का मुख्य उद्देश्य सदैव मानव को कर्म के लिए प्रेरित करना रहा है। मानव के ज्ञान की सार्थकता की 'कर्म' में ही है। धर्म दास कर्म-शक्ति की प्रेरणा गीता का मूल संदेश है।

[14] कालिका प्रसार, वृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 552
[15] तोमर शर्मा, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, पृ॰ 335
[16] डॉ. अच्युतानन्द घिल्डियाल, प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारक, पृ॰ 184
[17] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ॰ 34

www.ignited.in

'मनुष्य असत्य, बुराई, अन्याय और अत्याचार से इसलिए जूझता है कि विश्व की संचालिका शक्ति, सत्य, भलाई, न्याय और सदाचार को समर्थन देती है। इसी निष्ठा और विश्वास से मानव कर्म-क्षेत्र की ओर प्रवृत्त होता है, यही धर्म है।[18] धर्म मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बनाता है, क्योंकि एहिक और पारलौकिक सुख-शांति एवं समृद्धि के पथ की ओर से जाने वाला साधन धर्म है। इससे मानसिक चेतना जागृत होती है। यह मानव को आत्मसंयम और शान्ति से जीवन यापन करने योग्य बनाता है। सर्वप्रथम मनुष्य गृहधर्म का पालन करता है, उसके पश्चात् वह अपने मूल धर्म से ऊपर उठने पर वह लोक धर्म तथा फिर विश्व धर्म का पालन करता है। मानव की प्रारंभ से ही अलौकिक सत्ता के प्रति आस्था रही है। उसका विश्वास है कि लौकिक शक्तियों से भी अधिक शक्तिशाली कोई अज्ञात शक्ति है जो सांसारिक घटनाओं पर नियंत्रण रखती है। इस सत्ता के लिए प्रति मनुष्य में अनेक विश्वास विकसित होते चले गए। ये विश्वास ही प्रत्येक धर्म की आधारशिला है। "धर्म के इस संकुचित अर्थ से परे विस्तृत अर्थ भी है। भारतीय परम्परा में धर्म का प्रयोग गुण, कत्र्तव्य नियम न्याय,शील, कर्म आदि अर्थों में किया जाता है। इसके अनुकूल होने वाले कार्यों को धर्म कहा जाता है। इसके विपरीत आचरण को अधर्म की संज्ञा दी जाती है।"[19] पं॰ लखमीचन्द जी ने अपनी रागनियों और सांगों में सामाजिक जीवन में पड़ने वाले धर्म के प्रभावों को व्यक्तिगत जीवन में धर्म की भूमिका, वर्गीय समाज में धर्म का चरित्र, जनसाधारण की धार्मिक आस्थाओं को स्थान दिया है। धर्म की दार्शनिक मान्यताओं तथा इसके कर्मकांडी स्वरूप की व्याख्या करते हुए इसके नकारात्मक पहलुओं से उभारा है। पं॰ लखमीचन्द जी ने भी धर्म के महत्त्व को स्वीकार किया है। साथ ही साथ जब इसकी अति होने लगती है तो ये उसका विरोध भी करते हुए नजर आते हैं।

धर्म की परिभाषा:

1. डॉ. राधाकृष्णन का मत है कि "धर्म वह अनुशासन है, जो अन्तरात्मा को स्पर्श करता है और हमें बुराई और कुत्सिकता से संघर्ष करने में सहायता करता है, काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है। नैतिक बल को उन्मुक्त करता है, संसार को बचाने का, महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है।"[20]

2. डॉ. अरोड़ा जी ने धर्म के बारे में कहा है, "मानव जीवन के प्रति सहज निष्ठा एवं कत्र्तव्य भाव की प्रेरणा देने वाला और मानव-मानव से मातृत्व भाव का सृजन एवं विकास करने वाला तत्त्व ही धर्म है।"[21]

3. काका कालेलकर जी का कहना है कि "जिनसे व्यक्ति का जीवन उन्नति का पोषक बनें और सामाजिक जीवन कल्याणकारी और सर्वोदयी हो ऐसे सद्गुणों हो ऐसे सद्गुणों का अनुशीलन करके जिस प्रकार जीवन प्रणाली मनुष्य बांधता-बनाता है, वही धर्म है।"[22]

4. दुर्खीम के अनुसार, 'धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित अनेक विश्वासों और व्यवहारों को एक नैतिक समुदाय की भावना से बांधती है जो उसी प्रकार के विश्वासों और व्यवहारों की अभिव्यक्ति करते हैं।

5. स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है, आत्मा की भाषा एक है, किन्तु जातियों की भाषाएं अनेक होती है। धर्म आत्मा की वाणी है। वही वाणी अनेक जातियों की विविध भाषाओं तथा रीति-रिवाजों में अभिव्यक्त हो रही है।

6. पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने धर्म के बारे में कहा है, मेरा मत है कि संसार के महान् धर्मों में से प्रत्येक में एक दैवीय तत्त्व विद्यमान है। मैं समझता हूँ कि संसार में ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ परमात्मा में विश्वास उस दैवीय स्फुरन के बिना हो गया हो, जो मनुष्य में कार्य कर रही दैवीय आत्मा का प्रभाव है।[23]

7. डॉ. एस्टलिन कारपेंटर का भी विचार इनके विचार मिलता-जुलता है – "वह यह स्वीकार करेगा कि वह स्वयं इस विश्वास में भाग नहीं ले सकता कि धर्म का एक स्वरूप परम है।"[24]

8. फ्लेडरट के अनुसार, "धर्म संसार को शासित करने वाली शक्ति के साथ मानवी जीवन का संबंध है जो उसके साथ मिलकर एक होना चाहता है।"[25]

[18] डॉ. हेमेन्द्र कुमार, स्वातन्त्र्योतर हिन्दी उपन्यास, पृ॰ 267

[19] डॉ. दिवाकर पाठक, भारतीय नीतिविज्ञान, पृ॰ 64

[20] डॉ. राधाकृष्ण, धर्म और समाज, पृ॰ 45

[21] डॉ. रामस्वरूप अरोड़ा, प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन, पृ॰ 206

[22] काका कालेलकर, युगानुरूप हिन्दू जीवन दृष्टि, पृ॰ 67

[23] Maksmular, The life and letters of Fredrik, Part-2, p. 464

[24] Vedaral Josefe. Corpenter A memorial Volume (1925), p. 117-118

[25] विद्या भूषण, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, पृ॰ 630